शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

www.shodh.net

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा

दिक साहित्य से प्रारम्भ लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रवहमान ललित कलाओं की परम्परा हिन्दी साहित्य में भी सतत् प्रवाहित होती रही। हिन्दी-साहित्य में सर्वप्रथम सिद्ध-साहित्य में गूढ़ार्थ शैली में रहस्यात्मक पदों की रचना की गई। सिद्धों ने बौद्ध-धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिन्दी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता है। राहुल साँकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नाम का उल्लेख किया है। जिनमें सिद्ध सरहपा से यह साहित्य आरम्भ होता है। सिद्धों की रचनाएँ हमें दो रूपों में मिलती हैं गीति तथा मुक्तक। गीति के अन्तर्गत चर्यापद और वज्रगीत आते हैं तथा मुक्तक के अन्तर्गत दोहे और अर्धालियाँ। चर्यापद से तात्पर्य है सिद्धों की अपनी-अपनी चर्यायें। इन चर्याओं से सम्बन्धित वस्तुओं और प्रक्रियाओं को ये सिद्ध आध्यात्मिक अर्थ दे दिया करते थे। इन सिद्धों के साहित्य में कलाओं का तो कोई स्थान था ही नहीं, इसलिए चित्र, मूर्ति, वस्तु आदि कलाओं का सिद्ध-साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। केवल संगीत कला का उल्लेख मिलता है वह भी आध्यात्मिक अर्थ में। सिद्ध वीणापा की वीणावादन की चर्या का आध्यात्मिक रूपक द्रष्टव्य है-

'वीणापा की चर्या में वीणा को हेरुक ज्ञान की वीणा के रूप में परिकल्पित किया गया है। इसी वीणा में सूर्यरूपी तन्त्री लगी है। अनाहत का दण्ड दोनों को सम्बद्ध करता है। आली (स्वर) तथा काली (व्यंजन) इसके प्राथमिक सरगम हैं। साधक वज्रनृत्य कर रहा है। सहसाधिका योगिनी गा रही है। बुद्ध नाटक का अभिनय हो रहा है[1] इस प्रकार हठयोग के अन्तर्गत वीणा का वर्णन देने के उपरान्त वे अपनी सखी को सम्बोधित कर कहते हैं-

हे सखी हेरुक वीणा बजा रही है, राजा नाच रहा है और देवी गा रही है। यह बुद्ध नाटक हो रहा है। इसी प्रकार कुक्कुरिया की महामाया साधना में वज्रनृत्य के साथ गाई जाने वाली वज्रगीति में सखी के प्रति स्पष्ट सम्बोधन है-

'ओ सखी वज्र द्वारा प्रबोधित होने पर कमल विकसित हो रहा है आओ महासुख पर आरोहण कर नृत्य करें।[2]

इसी प्रकार नायिका अवधूती को वधू के रूप में कई स्थानों पर चित्रित किया है। वधू से परिणय के लिए कृष्णपाद बारात सजाकर जाते हैं, जिसमें पटह, मादल सभी प्रकार के बाजे हैं।[3] चर्यापदों में प्रत्येक पद के साथ उसके राग का नाम दिया गया है, ये राग संख्या में कुल अठारह हैं। संगीत मकरन्द में चर्यापदों में उल्लिखित रागों का नाम हैं- धनखी (धन्नाखी), गुर्जरी, बंगाल, पटमंजरी, भैरवी, मल्हार (मल्लारी)। इन रागों को प्रात:काल गाने का विधान है। शबरी (सावेरी) मध्याह्न में गायी जाती थी।[4] अत: कहा जा सकता है कि सिद्धों के पदों के राग शास्त्रीय पद्धति से पृथक नहीं थे।

नाथ-साहित्य में भी ललित कलाओं के अन्तर्गत आने वाले उपकरण उल्लिखित हैं, लेकिन उनका प्रतीकात्मक प्रयोग आध्यात्मिक अर्थ में ही हुआ है। मूर्तिपूजा का 'गोरखबानी' में विरोध मिलता है-

हिन्दु ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद जहाँ देहुरा न मसीत।।[5]

फिर गुरुदेव स्यंभ[6] तो शरीर के भीतर है। अन्य देवों की पूजा करना जीवन को व्यर्थ गँवाना है। वास्तुकला के अन्तर्गत निर्मित गढ़, नगरकोट का प्रतीकात्मक उल्लेख हुआ है-

'काया गढ़ भीतिर नौ लख शाई[7]

कायारूपी दुर्ग के भीतर नौलाख खाइयों का वर्णन है, जिन्हें पारकर पहुँचना अति दुष्कर कार्य है। नगर कोट अथवा प्राचीरों से रक्षित नगर हैं, उसमें कई मार्ग हैं, किन्तु राजद्वार अवरुद्ध है-

नगरकोटि की बहुविधि गली। सुन्दर एक राजंदरि खड़ी
पंच महारिषि तहां कुटवाल। तिनकी तृश्या महाझूझारि।[8]

संगीतकला के अन्तर्गत परब्रह्म की आरती में झाँझ, शंख, बाँसुरी आदि के ध्वनित होने का उल्लेख है-

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

www.shodh.net

अनत कला जाकै पार न पावै। संष मृदंग धुनि बेनि बजावै।[9]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सिद्ध और नाथ-साहित्य में कला और उनसे सम्बन्धित सामग्री एक आध्यात्मिक अर्थ की प्रतीक है लौकिक की नहीं।

'रासो-साहित्य' के अन्तर्गत खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो आदि ग्रन्थ आते हैं 'पृथ्वीराजरासो' की रचना पृथ्वीराज के दरबारी कवि चन्द ने की थी। कविचन्द केवल राजकवि ही नहीं थे, बल्कि पृथ्वीराज के सामन्त, सखा एवं सलाहकार भी थी। 'पृथ्वीराजरासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। पृथ्वीराज रासो के विभिन्न संस्करणों का उल्लेख इतिहास में मिलता है। ललित कलाओं के संदर्भ में पद्मावती समय में समस्त कलाओं का उल्लेख मिलता है। वैसे तो पृथ्वीराज रासो का प्रारम्भ ही मंगलाचरण से हुआ है जो मूर्तिकला की ओर संकेत करता है। मंगलाचरण द्वारा रचनाकार विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना द्वारा मंगल की भावना प्रस्तुत करता है-

ऊँ आदिदेव प्रनम्य नम्य, गुरयं वानीयं वंदे पयं।
सिष्ट धरन धारयं वसुमती लच्छीस चर्नाश्रयम्।।
तुं गुं तिश्ष्टति ईस दुष्ट दहनं सुनार्थ सिद्धिश्रयं।
छिर्चजंगम जीवन चंद नमयं, सर्वेस वर्दामयं।।[10]

मूर्तिकला का उल्लेख हिन्दी साहित्य में अन्य स्थानों पर भी मिलता है जिसमें जयचन्द द्वारा पृथ्वीराज की स्वर्णमूर्ति द्वार पाल के रूप में द्वार पर रखवाने का और संयोगिता द्वारा उस मूर्ति को माला पहनाने का उल्लेख है।[11] पद्मावती समय में कवित्त छन्द में पद्मावती के अतिशय सौन्दर्य का मूर्तिकरण इस प्रकार है-

नैन निरखि सुष पाय सुक, यह सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिललिं राज पृथिराज जिय।।
(पद्मावती समय रामकृष्ण रस्तोगी- पृ0 57)

दूहा नामक छन्द में 'शिवमण्डप' का उल्लेख है। पद्धरी नामक छन्द में पद्मावती द्वारा गौर-शंकर की पूजा वर्णित है-

'पूजिय गवरि शंकर मनाय'
(पद्मावती समय पृ0 80)

पद्मावती समय में चित्रकला का उल्लेख दूहा, भजंगी, नामक छन्दों में किया गया है। चित्रकला के अन्तर्गत ब्राह्मण द्वारा मणियों तथा मोतियों से चौक पूरने का वर्णन इस प्रकार किया है-

'नारिकेल फल परठि दुज,
चौक पूरि मनि मुत्ति।[12]

कुमोदमणि की बारात में घोड़ों की साज - सज्जा के अन्तर्गत पाँच रंगों से रंगी ढालों का उल्लेख निम्न है-

रंग पचरंग ढलकत ढालं।[13]

वास्तुकला के अन्तर्गत पदमावती का सखियों के साथ गृह - उद्यान में घूमने का उल्लेख है-

सषियन संग खेलत फिरत, महलानि बाग-निवास[14]
(पदमावती समय- पृ0 54)

उस समय राजा अगणित दुर्गों के स्वामी होते थ। ऐसे ही अगणित विशाल दुर्गों के स्वामी से पद्मावती का विवाह निश्चित करने का उल्लेख है-

नर नारिद नर पाती, बढ़े गढ़ दुग्ग असेसह।[15]

संगीतकला के अन्तर्गत 'पद्मावती समय' छन्दों में मात्र, लय, गीत, ताल, यति आदि का पूर्ण निर्वाह हुआ है। युद्ध में बजने वाले वाद्ययन्त्र-निसान, नगाड़े दुन्दुभि, डंका आदि का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। 'सुरपंच'[16] शब्द का प्रयोग पंचवाद्य- श्रृंग, तम्भर, शंख, भेरी एवं जयघटा के लिए हुआ है जो प्राचीन समय में राजकीय वैभव में चिन्ह माने जाते थे।

विद्यापति कृत 'कीर्तिलता' में कहीं-कहीं कलाएँ देखने को मिलती हैं। कीर्तिलता के प्रथम पल्लव में

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

www.shodh.net

गणेश की वन्दना तत्कालीन मूर्तिकला को प्रमाणित करती है। अनुष्टुप छन्द में शिव की स्तुति का वर्णन है-

शशिभानुवृहद्भानुस्फुरत्त्रितय चक्षुषः।
बन्दे शम्भोः पदाम्भोजज्ञानतिमिरद्विषः।।17

वस्तुवर्णन के अन्तर्गत विद्यापति ने नगर-वर्णन, सेना-वर्णन का चित्र उकेरा है। वास्तु विद्या के अन्तर्गत भव्य महलों, सुन्दर वाटिकाओं, देवालयों, वणिकवीथियों के सुन्दर चित्र कवि की प्रतिभा के परिचायक हैं।[18]

हिन्दी में सन्त-साहित्य के अन्तर्गत समस्त ललित कलाओं का उल्लेख मिलता है, लेकिन समस्त कलाएँ प्रतीकात्मक अर्थ लिए हुए हैं। 'चित्र' शब्द का प्रयोग कबीर के साहित्य में अनेक बार हुआ है। कहीं पर 'चित्र' शरीर का प्रतीक है तो कहीं पर समस्त सृष्टि के उपकरण का प्रतीक है, जिनके साथ विधाता क्रीड़ा करता है-

बहुविधि चित्र बनाय के हरि, रची क्रीड़ा रास।[19]
चित्र रच्यो जगदीस समुझु मनबौरा हो।।[20]

इसके अतिरिक्त चित्रगत सामग्री में तीन रंगो का वर्णन है, जिनसे चुनरी रंगी हुई है। वह रंग हैं सत, रज और तम (त्रिगुणमय पदार्थ) अर्थात् माया रूपी सुन्दरी श्वेत, लाल और काले रंग की चुनरी पहन कर घूम रही है-

रच्यो रंग तिनि चूनरी मनबौरा हो।
सुन्दरी परिहरे आय समुझु मनबौरा हो।।[21]

सनृ-साहित्य में चित्रकला के अन्तर्गत चौक पूरने और लीपने का भी उल्लेख है-

बहुविधि आरती साजि, तो चौक पुरावहीं।
मोतियन थारभराइ के, कलस लेसावहीं।।[22]
दुलहिनि लीपि चौक बैठायों, निर्भय पद गाता।।[23]

मूर्तिकला का सन्त साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं मिलता है, क्योंकि सभी सन्तों ने निराकार ईश्वर की साधना पर बल दिया है। मूर्तिपूजा का विरोध किया है। सन्त साहित्य में प्रयुक्त राम, माधव, मधुसूदन, बनवारी, गोपाल आदि सभी शब्द निराकार ईश्वर के प्रतीक हैं। वास्तुकला के अन्तर्गत वेदी, महल, गढ़, मण्डप आदि का वर्णन है, लेकिन ये सभी शब्द आध्यात्मिक अर्थ लिए हुए हैं। कबीर ने विभिन्न रूपकों के माध्यम से इनका वर्णन किया है-

दुलहनी गावहु मंगलाचार
हम घरि आये हो राजा राम भरतार।।
तन रत करि मैं मन रत करिहुँ, पंचतत बराती।
रामदेव मोरै पाहुनै आए, मैं जोवन मदमाती।
शरीर सरोवर वेदी करिहुँ, ब्रह्मा बेद उचार।
रामदेव संगि भांवरि लैहुँ, धंनि धंनि भाग हमार।।[24]

पंचतत्त्वों द्वारा मिर्मित मण्डप का सौन्दर्य अलौकिक है-

मैं सासरे पीव गौहनि आई।
सांई संगि साधा नहीं पूगी, गयौ जोबन सुपिना की जांई।
पंचजना मिलि मंडप छायौ, तीनि जनां मिली लगन लिखाई।[25]

वास्तुकला के अन्तर्गत सांसारिक गढ़ का वर्णन है-

क्यूँ लीजे गढ़ बाँका भाई, दोबर कोट अरु तेवड़ खाई।
काम किवाड़ दुख सुख दरबानी, पाप पुनि राजा।।[26]

अर्थात् यह बहुत कठिन दुर्ग है इसमें अभेद्य दोहरी कोटे (दीवारें) हैं। तीन-तीन गहरी खाइयाँ है। दरवाजों में भारी भरकम किवाड़ हैं। कबीर के युग में गढ़ों और दुर्गों का महत्त्व था। उस समय जहाँ जढ़-रचना और गढ़-तोड़ना दैनिक कार्य था। कबीर ने उक्त पद द्वारा सांसारिक गढ़ की चर्चा की है।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

www.shodh.net

संगीतकला के अन्तर्गत कबीर के समस्त पद किसी-न-किसी राग में बँधो हैं, जो तत्कालीन संगीतकला को उजागर करते हैं। सभी प्रकार के वाद्यों-तत्, सुषिर, अवन, घन का उल्लेख सन्त-साहित्य में मिलता है-

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाय।
ए पुर पटन एं गलीं, बहुरि न देखै आइ।।
ढोल दमामा टुड़बड़ी, सहनाई संग भेरि।
औसर चल्या बजाई करि, है कोई राखै फेरि ।।
सातों सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।।[27]

सन्तों ने विवाह के अवसर पर, जन्म के अवसर पर, युद्ध में, सती होने के लिए जाते समय, आरती आदि अवसरों पर वाद्ययन्त्रों का उल्लेख किया है। सन्तों को वाद्ययन्त्रों का व्यक्तिगत अनुभव भी है। कबीर तार के बाजों में मोम के प्रयोग से परिचित हैं, साथ ही यह भी जानते हैं कि एक बार टूटने से सितार निरर्थक हो जाता है। पानपदास कहते हैं बिना तार के तम्बूरा कैसा! तथा उसके तार कसने के लिए उसमें लगी खूँटी को सावधानी से कसना चाहिए। पानप साहित्य में तत् वाद्यों के अन्तर्गत वीणा[28] तम्बूरा सुषिर वाद्यों में बीन[29], बन्सी, तूरी, शंख[30] आदि का तथा अवनद्ध के अन्तर्गत-ढोलक, डफ, मृदंग, नगाड़े[31] का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त घनवाद्यों में झाँझ, करताल का उल्लेख पानप-साहित्य में मिलता है। नृत्यकला का भी सन्त-साहित्य में पर्याप्त उल्लेख किया गया है-

सेत सिंहासन आसन बैठे, जहाँ सबद झनकार।

झंकार शब्द से ध्वनित् होता है कि राजदरबार में बाजे-गाजे और नृत्य भी सम्राट के सामने हुआ करता था, क्योंकि आगे कबीर कहते हैं-

छत्र सिंहासन चंवर ढुंलता, राग रंग बहु आगी।[32]

यहाँ 'राग रंग' से तात्पर्य है विविध प्रकार का गायन-वादन। बाँस पर नाचने वाले नटों की नृत्य क्रिया का पूर्ण चित्रांकन कबीर-साहित्य में मिलता है।[33] अतः सन्त-साहित्य में चित्र, वास्तु, संगीत कला का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है, परन्तु समस्त कलाएँ व उनके उपकरण रूपकों के माध्यम से प्रतीक रूप में प्रस्तुत हुए हैं। प्रतीकार्थ रूप में कलाओं का प्रयोग भले ही हुआ है, लेकिन यह स्पष्ट है कि समस्त कलाएँ उस समय विद्यमान थीं तथा अवसरानुकूल उनका प्रयोग किया जाता था। सभी सन्त निर्गुणमार्गी थे इसलिए उनके जीवन में राग-रंग का कोई उपयोग नहीं था, लेकिन समस्त कलाओं और उनके प्रयोग से सभी सन्त भली भाँति परिचित थे, इसलिए सन्तों के साहित्य में आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त कलाओं का प्रयोग प्रतीक रूप में देखने को मिलता है।

प्रेममार्गी सूफी कवि जायसी के साहित्य में समस्त ललित कलाएँ विद्यमान हैं। चित्र, मूर्ति, वास्तु तथा संगीतकला का क्रमशः संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

'सिंहलदीप वर्णन' में कवि मानसरोदक के सौन्दर्य का चित्रंकन करते हुए अपने उद्गार इस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं-

कनक पंखि पैरहिं अति लोने जानहु चित्र संवारे सोने।[34]

अर्थात् सरोवर के जल पर सोने के वर्ण के अत्यधिक लावण्यपूर्ण पक्षी तैरते रहते थे मानों किसी चित्र में सोने से अलंकरण किया गया हो। सिंहलद्वीप के हाटों के वास्तु-सौन्दर्य के विषय में कवि कहता है-

रचे हथौड़ा रूपन टारी। चित्र कटाव अनेक सँवारी।[35]

राजद्वार के वर्णन में अनेक वर्णों के सिंहली हाथी तत्तकालीन चित्रकला का संकेत करते दिखाई देते हैं-

कौनो सेत पीत रतनाने। कौनो हरे धूम और कारे।[36]

महादेव के मन्दिर में बसन्त पूजा के अवसर पर पद्मावती की सखियों का सुन्दर रंगो से रंगे होने का संकेत है-

करहिं कुरैरैं सुरंग रंगीली। औ चोवा चंदन सब गीली।[37]

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

www.shodh.net

पद्मावत में 'मण्डप' शब्द मन्दिर के लिए प्रयुक्त हुआ है जो तत्कालीन मूर्तिकला का सूचक है। 'जायसी ग्रन्थावली' में 'मंडप गमन खण्ड' के अन्तर्गत राजा रत्नसेन द्वारा महादेव की स्तुति का उल्लेख इस प्रकार है-

पद्मावति के दरसन आसा। दंडवत कीन्ह मँडप चहुँ पासा।
पुरुब बार होई कै सिर नावा। नावत सीस देव पहँ आवा।
नमो नमो नारायन देवा। का मोहिं जोग सकों करि सेवा।[38]

पद्मावती द्वारा भी बसन्त की पूजा कर महादेव को मनाने का उल्लेख मूर्तिकला को प्रमाणित करता है-

पुनि तुम्ह जाहु बसन्त लै पूजि मनावहु देव।
जिउ पाइअ जग जनमे पिउ पाइअ कै सेव।।[39]

पद्मावती का सखियों से निम्न कथन मूर्तिपूजा का संकेत देता है कि आज मेरे साथ मठ (मन्दिर) में चलो, मैं वहाँ महादेव को वासन्ती पूजा भेंट करना चाहती हूँ-

चलहु देव मढ़ गोहने चहौं सो पूजा दीन्ह।[40]

एक स्थान पर महादेव के लिए 'विस्वनाथ'[41] शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी खण्ड के अन्तर्गत पद्मावती द्वारा विधि विधन से अर्चन करने का वर्णन निम्न है-

पदुमावति गै देव दुआरु। भीतर मंडप कीन्ही पैसारु।
देवहि संसौ भा जिय केरा। भागौं केहि दिसि मंडप घेरा।
एक जोहार कीन्ह और दूजा। तिसैर आई चढ़ाए एन्हि पूजा।
फफूलन्ह सब मंडप भरावा। चंदन अगर देव नहवावा।
भर सेंदुर आगें होई खरी। परसि देव औ पाएन्ह परी।[42]

इसके अतिरिक्त जायसी के साहित्य में वास्तुकला के दर्शन अनेक स्थानों पर होते हैं। सिंहलद्वीप के सौन्दर्य वर्णन में वहाँ स्थिति मानसरोदक, ऊँचे आवास, खाईयाँ, गढ़ों के प्रकार, सप्तभूमिक प्रासाद आदि का भव्य एवं मनोहारी वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

सोरह सहस घोर घोर सारा साँवकरन बालका तोखारा।
सात सहस हस्ती सिंघली। जिमि कविलास एरावती बली।[43]

सिंहलद्वीप में पग-पग पर कुएँ-बावड़ी, कुण्ड और समस्त तीर्थों के साथ सिंहल के चारों ओर मठ और मण्डप बनाए गये थे-

पैग-पैग पर कुआँ बावरी। साजी बैठक औं पाँवरी।
औरु कुण्ड बहु ठाँवहि ठाऊ। सब तीरथ औ तिन्ह के नाऊ।
मठ मण्डप चहुँ पास सँवारे। जपा तपा सब आसन मारे।[44]

सिंहल नगर की प्रतोली ऊँची थी, ऊँचे आवास थे, मानो कैलास में इन्द्र के निवास हों। वहाँ चन्दन के चबूतरे भली भाँति निर्मित थे। समस्त चौपालों पर चन्दन के खम्भे थे और उसमें आयोजित सभाओं में सभापति उन खम्भों से पीठ टेके हुए बैठे होते थे।[45] सिंहलगढ़ का अलौकिक सौन्दर्य वर्णन द्रष्टव्य है-

पुनि आइअ सिंघल गढ़ पासा। का बरनौं जस लाग अकासा।
तरहिं कुरुँभ बासुकि कै पीठी। ऊपर इंद्रलोक पर डीठी।
परा खोह चहुँ दिसि तस बाँका। काँपै जाँघि जाइ नहिं झाँका।
अगम असूझ देखिडर खाई। परै सो सपत पतारन्ह जाई।
नव पँवरी बाँकी नव खण्डा। नवहुँ जो चढ़ै जाइ ब्रह्मंडा।
कंचन कोट जरे नग सीसा। नरवतन्ह भरा बीजु अस दीसा।
लंका चाहिए ऊँच गढ़ ताका। निरखि न जाइ दिस्टि म थाका।[46]

जायसी के साहित्य में नौ पौरियाँ, पाँच कोटपाल, आदि शब्दावली प्रतीकात्मक आध्यात्मिक अर्थ लिए

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

www.shodh.net

हुए है। गढ़ पर चार प्रकार के राजाओं के बसने का उल्लेख है- गढ़पति अश्वपति, गजपति और नरपति। सबके धवलगृह सोने से तैयार किए हुए थे।[47] जिस प्रकार सात स्वर्ग सुने जाते हैं उसी प्रकार वह राज मन्दिर सप्तभूमिक प्रासाद के रूप में सजा हुआ था। प्रत्येक खण्ड पृथक्-पृथक् सौन्दर्य लिए हुए था-

सुने सात बैकुँठ जस तस साजे खँड सात।
बेहर बेहर भाउ तेन्ह खँड खँड ऊपर जात।[48]

उक्त कलाओं के समान ही जायसी के काव्य में संगीतकला का भी पूर्ण परिपाक देखने को मिलता है। संगीतकला में प्रयुक्त होने वाले समस्त वाद्यों और नृत्य का उल्लेख जायसी ने 'पद्मावत' में अनेकानेक स्थानों पर किया है। सिंहल के श्रृंगार-हाट के वर्णन में वेश्याओं के हाथों में वीणा होने का वर्णन है।[49] जायसी ग्रन्थावली में 'जोगी खण्ड' में राजा रत्नसेन का किन्नरी वीणा लिए वियोगी बन जाने का चित्रण इस प्रकार है-

तजा राज, राजा भा जोगी। और किंगरी कर गहेउ बियोगी।।[50]

वियोगी रत्नसेन के हाथ में वीणा लेते ही वीणा के पाँचों तन्तु (पंचभूत)बजने लगे-

किंगरी हाथ गेहं बैरागी। पाँच तन्तु धुनि उटठे लागी।[51]

इसी प्रकार विभिन्न अवसरों पर बजने वाले, ढोल, दुन्दुभि, भेरी, शंख, सिंगी, तूर्य झाँझ, बाँसुरी आदि का उल्लेख अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है-

बाजे ढोल दुंद औ भेरी ! माँदर तूर झाझ चहुँफेरी।
संख सींग डफ संगम बाजे। बंसकारि महुवर सुर साजे।

इसी छन्द में 'नृत्यकला' का भी उल्लेख हुआ है, चाँचर नामक नृत्य का वर्णन इस प्रकार है-

नवल बसंत नवल वे बारीं। सेंदुर बुक्का होई धमारी।
खिनहिं चलहिं खिन चाँचरि होई। नाँच कोउ भूला सब कोई।[52]

सिंहल के श्रृंगार-हाट के वर्णन में कहीं नृत्य और कौतुक का उल्लेख किया गया है, तो कहीं कठपुतली के नाच का -

कतहुँ छरहटा पेखन लावा। कतहुँ पाखँड काठ नचावा।[53]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी के साहित्य में समस्त कलाओं का अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। कोई भी कला अपने प्रदर्शन में किसी से कम नहीं है।

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में आदिकाल से प्रवहमान ललित कलाओं की सलिला निरन्तर प्रवहमान है। कहीं इसकी गति मन्द है तो कहीं तीव्र है। सिद्ध नाथ-साहित्य में कलाएँ प्रतीकात्मक हैं। सन्त-साहित्य में भी कलाएँ आध्यात्मिक अर्थ लिए हुए हैं। सूफी कवियों के साहित्य में भी ललित कलाएँ निरन्तर विकास की ओर अग्रसर रही है।

सन्दर्भ:-

1. सिद्धसाहित्य - धर्मवीर भारती, पृ. 174
2. सिद्धसाहित्य - धर्मवीर भारती, पृ. 175
3. सिद्धसाहित्य - धर्मवीर भारती, पृ. 214
4. सिद्धसाहित्य - धर्मवीर भारती, पृ. 174
5. गोरखबानी - सबदी 68
6. गोरखबानी - सबदी 9
7. गोरखबानी - सबदी 39
8. गोरखबानी - प्राण संकली पृ. 167
9. गोरखबानी - आरती पृ. 157
10. पद्मावती समय - रामकृष्ण रस्तोगी पृ. 29
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ.-22
12. पदमावती समय - रामकृष्ण रस्तोगी पृ. 68
13. पदमावती समय - रामकृष्ण रस्तोगी पृ. 70
14. बाग-निवास से तात्पर्य उन उद्यानों से है जो कि राजभवनों में निजी उपयोग के लिए बनाए जाते थे। ये उद्यान ,तु अनुकूल

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्रारंभिक हिन्दी-साहित्य में ललित कला का स्वरूप

डॉ० निधि सिन्हा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

www.shodh.net

बनाए जाते थे।

15. पद्मावती समय - रामकृष्ण रस्तोगी पृ. 66
16. पद्मावती समय - रामकृष्ण रस्तोगी पृ. 48
17. आदिकालीन काव्य - डॉ. वासुदेव सिंह पृ. 65
18. आदिकालीन काव्य -डॉ. वासुदेव सिंह, पृ. 44
19. बीजक ग्रन्थ - पंचम हिंडोला प्रकरण - 1
20. बीजक ग्रन्थ - सप्तम चाँचर प्रकरण - 1
21. बीजक ग्रन्थ - सप्तम चाँचर प्रकरण - 1
22. कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन-आर्याप्रसाद त्रिपाठी, पृ. 322
23. बीजक ग्रन्थ - शब्द 16
24. कबीर ग्रन्थावली - डॉ. श्यामसुन्दर दासपद - 1
25. कबीर ग्रन्थावली - डॉ. श्यामसुन्दर दासपद - 226
26. कबीर ग्रन्थावली - डॉ. श्यामसुन्दर दासपद - 359
27. कबीर ग्रन्थावली-पारसनाथ तिवारी - 16 चितावणी कौ अंग
28. सुषम वेद- पृ. 154
29. सुषम वेद - पृ. 123
30. सुषम वेद - पृ. 15
31. सुषम वेद - पृ. 13
32. कबीर ग्रन्थावली - श्यामसुन्दरदास - पद 299
33. कबीर ग्रन्थावली - पारसनाथ तिवारी - पद 14
34. जायसी ग्रन्थावली आचार्य रामचन्द शुक्ल - सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड पृ. 11
35. जायसी ग्रन्थावली आचार्य रामचन्द शुक्ल - सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड पृ. 12
36. जायसी ग्रन्थावली आचार्य रामचन्द शुक्ल - सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड पृ. 15
37. पद्मावत - डॉ. माता प्रसाद गुप्त, पृ. 160
38. पद्मावत - डॉ. माता प्रसाद गुप्त, पृ. 144
39. पद्मावत - डॉ. माता प्रसाद गुप्त, पृ. 151
40. जायसी ग्रन्थावली-आ. रामचन्द्र शुक्ल, वसंत खण्ड पृ. 72
41. जायसी ग्रन्थावली- आ. रामचन्द्र शुक्ल, वसंत खण्ड पृ. 73
42. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 165
43. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 20
44. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 24
45. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 30
46. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 34
47. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 38
48. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 42
49. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 32
50. जायसी ग्रन्थावली आ. रामचन्द्र शुक्ल, जोगीखण्ड पृ. 48
51. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 124
52. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 164
53. पद्मावत - डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 33

विशेषज्ञ सम्मति-

कविता तथा कला दोनों प्राय: एक ही जैसी श्रेणी से सम्बद्ध है। कलाओं में काव्य संदर्भ एवं कविता में कला संदर्भों की खोज एक अनूठी बात है और आज हिन्दी शोध के लिए यह एक गौरव की बात है कि दोनों के बीच स्थापित रचनात्मक एवं कलात्मक तादात्म्य की सूक्ष्म खोज की जाए।

प्रस्तुत शोध आलेख इसी प्रयास का प्रतिफल है।

शोध संचयन SHODH SANCHAYAN